साधक-जीवन में त्रिगुप्ति का महत्त्व

श्रीमती रतनबाई चोरडिया

यद्यपि त्रिगुप्ति को श्रमण-श्रमणी की जीवन-चर्या में स्थान दिया गया है, किन्तु इसका अंशतः उपयोग भी श्रावक-श्राविका के जीवन को कंकर से शंकर बना सकता है। विदुषी लेखिका ने यह आलेख श्रमणाचार को लक्ष्य करके नहीं, अपितु गृहस्थों को ध्यान में रखकर प्रस्तुत किया है।-सम्पादक

जैन धर्म में साधक-जीवन का बहुत महत्त्व है। साधकों के जीवन में सत्यवादिता, उदारता, सहिष्णुता, करुणा, कर्त्तव्यनिष्ठा आदि गुण कूट-कूट कर भरे होते हैं। साधक श्रावक का मन दर्पण के समान स्वच्छ, हृदय पवित्र व उदार होता है। दान-शील एवं सरल व्यवहार के कारण उसे सभी का प्रेम प्राप्त होता था। पापों से विरत रहने वाला, पक्षपात रहित, बड़ों का आदर करने वाला, किये हुए उपकार को मानने वाला, हिताहित मार्ग का ज्ञाता, दीर्घदर्शी जीवन श्रावक का होता है। श्रावक इन्द्रियों का गुलाम नहीं होता, उन्हें वश में रखता है। उसका सोचना, समझना, बोलना और करना सबकुछ विलक्षण होता है। वह संसार में रहता हुआ भी संसार से अलग रहता है। उसके अन्तर में शम, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा का अमृत सागर लहराता है। उसके हृदय में दया का झरना बहता है। सभी जीवों के प्रति उसके मन में कल्याण की भावना रहती है। मानव जीवन में तीन बड़ी शक्तियाँ हैं- मन-वचन व काय शक्ति। यदि हम इन तीनों शक्तियों का सदुपयोग करते हैं तो मानव से महामानव बन सकते हैं। हमारा यह मानव शरीर एक पवित्र मंदिर है, जिसमें जीव रूपी शिव विराजमान है। इस देह को देवालय व आत्मा को देवता कहा है। उस सोये हुए देवत्व को जगाने के लिये मन-वचन-काय की गुप्ति अति आवश्यक है।

प्रश्न :- मनोगुप्ति से क्या होता है?

उत्तर:- मनोगुप्ति से अशुभ अध्यवसाय में जाते हुए मन को रोका जाता है। आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान का त्याग व धर्मध्यान में मन स्थिर किया जाता है। समस्त कल्पनाओं से रहित होकर, समभावों से आत्मस्वरूप में रमण करना मनोगुप्ति से ही सम्भव है।

हमारा मन ही बंधन और मोक्ष का कारण है। मन को अच्छी तरह से शिक्षित किया जाय तो वह हमारा सबसे अच्छा मित्र है व हितैषी है। उसके विपरीत अशिक्षित मन सबसे बड़ा शत्रु है। मन यदि इन्द्रिय सुखों में भटकता है, क्रोध-मान-माया व लोभ की भट्टी में जलता है तो शत्रु है। यही मन यदि जप-तप-त्याग-संयम का पालनकर आत्मभावों में रमण करता है, अन्तरात्मा व परमात्मा में लीन रहता है तो अनन्त-अनन्त जन्मों के

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्मबन्धनों को तोड़कर सब दुःखों से हमें हमेशा के लिये मुक्त कर देता है। कर्मों की निर्जरा के लिये मनोगुप्ति आवश्यक है। मन को वश में करना सबसे कठिन कार्य है। मन घोड़े से भी अधिक तेज दौड़ता है। यह मन बन्दर से भी अधिक चपल है। मछली से अधिक चिकना है। आकाश-पाताल की सैर करने में समर्थ है। मन की एक आदत होती है इसे रोको तो यह अधिक भागता है, पकड़ो तो दौड़ता है, मनाओ तो ज्यादा मचलता है। भगवान कहते हैं कि मन को मनाने की नहीं, साधने की जरूरत है। क्योंकि नियन्त्रित मन ही आत्मा का हितैषी है। अतः इस चंचल मन को कैसे एकाग्र व स्थिर करें इसके लिए ज्ञानी कहते हैं-

1. पदार्थोंकी नश्वरता का बोध करें। संसार के सभी पदार्थ नश्वर हैं जिनको पाने के लिये हम अपनी पूरी शक्ति व समय को बर्बाद कर रहे हैं। वे रहने वाले नहीं हैं। मेरे सामने ही देखते-देखते नष्ट हो सकते हैं, अतः पदार्थों से मन का आकर्षण मिटाकर उसे एकाग्र एवं स्थिर करें।
2. भगवान के मार्ग एवं भगवान के वचनों पर हम दृढ़ श्रद्धा करें। भगवान ने जो कुछ कहा है वही सत्य है। उसी में हमारा हित है। हमारा सुख-दुःख, बंधन और मोक्ष मन के ही अधीन है। पुण्य व पाप के बीज मन रूपी धरती में ही बोये जाते हैं। स्वच्छ व पवित्र मन मानव की सबसे बड़ी संपदा है। अनादि काल से हम मोह-अज्ञान, प्रमाद एवं मिथ्यात्व रूपी मादक द्रव्य का सेवन कर मन के मालिक बनने के स्थान पर मन के गुलाम बने हुए हैं। यदि यह मोह व अज्ञान का नशा उतर जाये तो आत्मा परमात्मा बन सकता है। हमारी साधना का मूल लक्ष्य मन के विकारों पर विजय पाना, कामनाओं, वासनाओं व संकल्प-विकल्प रूप सर्व इच्छाओं से मुक्त होना है।
3. **आत्मा की शाश्वतता का दृढ़ विश्वास-** मेरी आत्मा शाश्वत है। वह पहले भी थी, आज भी है और आगे भी रहेगी। वह कभी मरती नहीं, गलती नहीं, सड़ती नहीं। चाहे कितने ही दुःख-पीड़ाएँ-कष्ट आ जायें आत्मा का एक प्रदेश भी नष्ट नहीं होता।
4. **मृत्यु का सतत स्मरण-** मृत्यु एक अनिवार्य सत्य है। जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है। जो अपनी मृत्यु को भूल जाता है वही पाप-प्रवृत्तियों में लिप्त बन कर जीवन जीता है। यह महल, मकान, धन-दौलत, जमीन-जायदाद सब ज्यों के त्यों पड़े रहते हैं, हमारे साथ अपने किये हुए शुभ व अशुभ कर्म ही जाते हैं। मौत को टाला नहीं जा सकता, पर हाँ सुधारा अवश्य जा सकता है। ज्ञानी कहते हैं कि मृत्यु आये उसके पहले हम अपनी सोई हुई आत्मा को जगा लें। हमारे मन में मंदिर जैसी पवित्रता व जीवन में चन्दन जैसी महक होनी चाहिये। मन की पवित्रता ही मुक्ति का द्वार खोलती है।

प्रश्नः- वचन गुप्ति से क्या होता है?

उत्तरः- वचन गुप्ति से जीव निर्विकार भाव को प्राप्त करता है। विकथाओं से मुक्त होता है। अशुभ वचनों का निरोध होता है, जिससे शुभ वचनों में प्रवृत्ति होती है।

मनुष्य के पास वाणी की शक्ति बड़ी महत्त्वपूर्ण शक्ति है। वाणी की अभिव्यक्ति की क्षमता जिस तरह

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

हमें प्राप्त है वैसी संसार के अन्य जीवों को उपलब्ध नहीं है। अतः हम पूर्ण विवेक रखते हुए, मर्यादित, संयमित व धर्मयुक्त भाषा का प्रयोग करें। वाणी के अविवेक से कई समस्याएँ खड़ी होती हैं। अतः हम जो भी बोलें, बहुत सोच समझकर व मधुर बोलें। कटु, व्यंगपूर्ण व किसी के गुप्त रहस्यों को उद्घाटित करने वाले वचन कभी न बोलें। ऐसा सत्य भी न बोलें जिससे किसी की आत्मा में क्लेश पैदा हो। अनावश्यक शब्दों को बोलकर अपनी शक्ति को खर्च न करें। सामने वाला अनुचित भी बोलता है तब भी हम अपना संयम बनाये रखें। कौन व्यक्ति सज्जन व कौन दुर्जन है, इसकी पहचान वाणी से ही होती है। यदि कोई दुर्व्यवहार करता है, गलत भाषा का प्रयोग करता है तो भी हम सहिष्णु बनकर विवेक रखकर सहन करना सीखें।

यह जिह्वा बड़ी चटोरी है, खाने को मीठा मांगती है पर बोलती कड़वा है। आज मनुष्य की वाणी कड़वी व कठोर बनती जा रही है इसीलिये जीवन में पापों का अंतहीन सिलसिला जारी है। ऐसा लगता है मनुष्य मीठा बोलना ही भूल गया है। उसकी वाणी से तीखे बाण की तरह शब्द निकलेंगे तो फिर जीवन में महाभारत होना सुनिश्चित है। कटुवाणी क्लेश एवं दुःख का कारण बनती है। पांचों इन्द्रियों में रसनेन्द्रिय बड़ी खतरनाक है। यह होती तो चार अंगुल की है, लेकिन इस पर नियन्त्रण नहीं रखते हैं तो यह छः फुट के आदमी को मार गिराती है। इसके दो बड़े काम हैं- चखना व बकना। बोलना खराब नहीं है पर बकना अपराध है। वाणी वह खट्टा पदार्थ है जो मैत्री के दूध को फाड़ देती है। वाणी वह चुम्बक है जो मनुष्य के प्रति आकर्षण पैदा करती है। वाणी वंह एक्सरे मशीन है जो अन्तरंग का फोटो निकाल कर सामने रख देती है। वाणी में इतनी शक्ति है कि बिगड़े हुए काम को सुधार भी सकती है एवं बनते हुए कार्य को बिगाड़ भी देती है।

मन के भावों को प्रकट करने का साधन वाणी है। इसी से पता चलता है कि मनुष्य का हृदय कितना स्वच्छ व पवित्र है। वाणी से ही व्यक्तित्व की पहचान होती है। हमारा सारा व्यवहार वाणी के आधार पर चलता है। वाणी के द्वारा ही पारस्परिक संबंधों में अमृत उंडेला जा सकता है। यही वाणी गहरे घाव भी कर सकती है। इस वाणी की कटुता ने एक घर को नहीं, अनेक घरों को उजाड़ा है। यह वाणी एक ओर द्वेष के कांटे बिखेरती है तो यही वाणी मधुर वचनों के पुष्प व सौरभ भी फैलाती है। अतः हम पूर्ण उपयोग रखकर हितकारी वचन बोलें। हम अपने वचनों का दुरुपयोग न करें। सोचें इन वचनों के माध्यम से हमने कितनी जिन्दगियाँ बर्बाद की। कितने जीवन में आग लगा दी, कितनों की घात करवा दी। हमारी यह जुबान आग की लपटें न बन जायें। हमारे मुँह से आग के शोले न उगलें। हम सदैव अपने वचनों को संवारने व मधुर बनाने की कोशिश करें। नहीं बोलना आये तो मौन रखें। जहाँ हमारी भाषा शिष्ट होनी चाहिए वहाँ हमने क्लिष्ट बना ली। सोचें जिन वचनों से हमने दूसरों के हृदय में दावानल सुलगाया है, घाव बनाया है वह कैसे मिटेगा। वचन के घाव जल्दी नहीं भरते, बहुत दुःख-दर्द व पीड़ा देकर तड़फाते हैं।

जो मीठा बोलता है उसके प्रति हर किसी के मन में प्रेम उमड़ता है। प्रेम मांगने से नहीं मिलता, बांटने व देने से मिलता है। यदि हम सबसे प्रेम करते हैं, सबकी तन-मन से सेवा करते हैं। सबके प्रति सहयोग व

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मीयता की भावना रखते हैं तो सब हमारे बन जाते हैं। दो मीठे बोल जीवन की धारा बदल देते हैं। पीढ़ियों के जानी दुश्मन भी मित्र बन जाते हैं। शस्त्र से चीरे हुए हार्ट को टांके लगाकर जोड़ दिया जाता है, लेकिन शब्दों के द्वारा चीरे हुए हार्ट को जोड़ना बड़ा कठिन है। अतः हम वचनों का सदुपयोग करें।

प्रश्न- काय गुप्ति से जीव को क्या लाभ होता है?

उत्तर- काय गुप्ति में अशुभ कार्य से निवृत्ति की जाती है।

काय गुप्ति में शरीर को अशुभ चेष्टाओं या कार्योंसे हटाकर शुभ चेष्टाओं व कार्यों में यतनापूर्वक लगाया जाता है। अयतना का अर्थ है उपयोग शून्यता, असावधानी, अविवेक, अजागृति एवं प्रमाद। हम हर कार्य को यतनापूर्वक करके कर्म बंधन से बच सकते हैं।

मन एवं वचन दोनों का आधार काया है। चेतना के रहने का स्थान पूरा शरीर है। हमारे रोम-रोम में आत्मा के प्रदेश हैं। शरीर के माध्यम से ही चेतना की प्रतीति होती है। मन-वचन के बिना काया रह सकती है। पर काया के बिना मन-वचन की परिणति नहीं होती। हम इस शरीर का सदुपयोग कर मोक्ष को जा सकते हैं व दुरुपयोग कर नरक-निगोद में भी जा सकते हैं। अतः इस शरीर से जो भी क्रियाएँ करें उन्हें पूर्ण यतना व विवेक से करें। यतना से आस्रव रुकता है। यह शरीर जीवित भगवान का मंदिर है। जिसे यह समझ होगी वह कभी भी गलत कार्य कैसे कर सकता है? हम अपने शरीर के भीतर बैठे उस जीवित परमात्मा को देखें, समझें व उनके दर्शन करें। जो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख व अनन्त वीर्य से सम्पन्न है।

जब कायगुप्ति होती है तो संवर होता है। आस्रव का त्याग हो जाता है तभी हम चेतना में स्थिर होते हैं। काय गुप्ति का मतलब-अशुभ से हमें छूटना है। इस शरीर से जितनी भी प्रवृत्तियाँ हम करते हैं, वे निर्दोष हों। इस तरह की प्रवृत्ति करें, जिससे किसी भी जीव को कष्ट न हो।

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे, जयं सए, जयं भुंजंतो भासंतो, पावकम्मं न बंधइ।

यतनापूर्वक चलने, खड़े रहने, बैठने, सोने, खाने व बोलने से पाप कर्मों का बंध नहीं होता है।

हमारे कदम मोक्ष मार्ग में अर्थात् ज्ञान-दर्शन चारित्र के मार्ग में आगे बढ़ें। मैं कैसे चल रहा हूँ, क्यों चल रहा हूँ, कहाँ चल रहा हूँ, किस कारण चल रहा हूँ, बिना मतलब के तो नहीं चल रहा हूँ? मैं संसारमार्ग में भौतिक सुखों के पीछे पागल बनकर तो नहीं दौड़ रहा हूँ? इस प्रकार हर कार्य में क्यों, कैसे, किसलिये लगायें, जैसे- मैं क्यों बोल रहा हूँ, क्यों खा रहा हूँ, कहाँ जा रहा हूँ, कैसे चल रहा हूँ, कैसे सो रहा हूँ? प्रत्येक प्रवृत्ति का निरीक्षण कर यतना रखें।

हम संसारमार्ग में दौड़ते-दौड़ते परेशान हो जायेंगे तो भी मंजिल कभी नहीं मिलेगी, दूरी कम नहीं होगी, लेकिन मोक्ष मार्ग में थोड़ा भी चलेंगे तो दूरी कम होती जायेगी व मंजिल के नजदीक पहुँचते जायेंगे।

काया से कोई भी क्रिया यदि हम यतनापूर्वक करते हैं तो वह संवर है। चाहे सामायिक करते समय सामायिक के बैग को भी अयतना से फेंक देते हैं तो वहाँ भी आस्रव है। दैनिक क्रियाओं में यदि हम यतना रखें तो

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कितने ही पापों से बच सकते हैं। जैसे कपड़े सुखा रहे हैं, झाड़ू निकाल रहे हैं, लाइट-पंखा आदि चला रहे हैं, खाना बना रहे हैं तो सोचें, यतना से घर कैसे झाड़ते हैं, कपड़े कैसे झटक-झटक कर सुखाते हैं। हमारे जैन साधु कैसे कपड़े सुखाते हैं वे छोटी से छोटी चीज को भी कैसे यतना से परठते हैं।

कर्मों के जाल से यदि हमें मुक्त बनना है तो हमारे भावों में निरन्तर विशुद्धि रहे। शुभ भावों से हम अपने को निरन्तर भावित करते रहें। बारह भावनाओं का चिंतन करते रहें। अपने को भावित कैसे करें। जैसे- ''मरना सबको एक दिन अपनी-अपनी बार'' मुझे भी एक दिन मरना है, रहना नहीं है। यहाँ से निश्चित जाना है फिर मुझे ऐसे कार्य नहीं करना है जिससे मैं दुर्गति का मेहमान बनूँ। जब मुझे सब कुछ यहीं छोड़कर जाना है तो फिर मैं वस्तु, व्यक्ति एवं परिस्थिति को लेकर राग-द्वेष के भाव क्यों करूँ। उस पर ममता की मोहर क्यों लगाऊँ? जो आया है वह अवश्य जायेगा। मैं भी जाऊँगा। इस तरह हर क्षण शुभ विचारों के द्वारा हम अपनी आत्मा को भावित करते रहें। मन की शक्ति हमें मिली है तो हम अच्छा सोचें, अच्छा चिंतन करें। वाणी की शक्ति मिली है तो हम मधुर बोलें। काया की शक्ति मिली है तो खूब सेवा व परोपकार के कार्य करें। हमें मन-वचन व काया ये तीन शक्तियाँ मिली हैं। हम इसका सदुपयोग व दुरुपयोग दोनों कर सकते हैं। दुरुपयोग तो हमने आज तक किया ही है। तभी तो अनन्त काल से हम भटक रहे हैं। अब तीनों का सदुपयोग कर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर अनन्त संसार को सीमित कर सकते हैं।

-चोरडिया भवन, थार हेण्डलूम के सामने, गोल बिल्डिंग रोड़, जालोरी गेट, जोधपुर-342003(राज.)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org